Dr Kumari Manju
H.O.D. Eco.
R.N.C.

Market Failures and Economic Role of Government

Ques: बाजार तंत्र की विफलताओं की विवेचना करें। आर्थिक विकास में सरकार की भूमिका क्या है?

Ans: आदर्श बाजार व्यवस्था वह है जिसमें सभी वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय मुद्रा के लिए बाजार कीमत पर होता है। बाजार अर्थव्यवस्था वह है जहाँ किन वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन किया जायेगा, उनका उत्पादन किस प्रकार होगा तथा उनका उपभोग किनके लिए होगा अर्थात् क्या, कैसे तथा किनके लिए जैसे प्रश्नों का समाधान प्रमुखतः बाजार में पूर्ति तथा मांग के आधार पर होता है। इस प्रकार आर्थिक संगठन के फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रेरित होती है इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए फर्म उत्पादक साधनों को खरीद करती है तथा वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन कर बेचती है और उत्पादन साधनों का विक्रेता आय का उपार्जन करता है। इसी आय से वह बाजार जाता है तथा वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग को निर्धारित करता है। फर्म द्वारा की गई पूर्ति तथा पारिवारिक मांग बाजार कीमत तथा वस्तुओं की मात्रा को निर्धारित करती है।

ऐसी बाजार अर्थव्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप के बिना भी अर्थव्यवस्था में उपलब्ध आर्थिक संसाधनों से सर्वाधिक लाभ मिलता है किन्तु वास्तविकता में कोई भी अर्थव्यवस्था पूर्णरूप से आदर्श बाजार अर्थव्यवस्था की तरह नहीं होती जो पूर्ति तथा मांग अर्थात् अदृश्य हाथ (invisible hand) द्वारा बिना बाधाओं के संचालित होती है।

इस प्रकार की आदर्श अर्थव्यवस्था पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में ही संभव है। पूर्ण प्रतियोगिता एक आदर्श बाजार स्थिति है। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक बाजार में अपूर्णताएँ पाई जाती हैं जिनके कारण बाजार व्यवस्था का संचालन असफल हो जाता है। इसके निम्न प्रमुख कारण हैं:

(1) बाजार में एकाधिकार या अल्पाधिकार का पाया जाना।
(2) बाह्यताओं के कारण (Externalities) के कारण लागत या लाभ की अतिरिक्त उपस्थिति। (3) पैमाने का वृद्धिमान प्रतिफल (Increasing returns to scale) (4) बीमा तथा भविष्य-सम्बन्धी बाजार कभी भी पूर्ण नहीं हो सकते। (4) सूचना का धीमी गति से प्रसार या विपणन (Marketing) संस्थाओं के संचालन का अभाव - इनसे बाजार के समायोजन (adjustment) में देरी। (5) व्यक्ति या उद्यमी द्वारा समायोजन की प्रक्रिया का धीरे-धीरे सम्पन्न होना (6) व्यक्तियों या उद्यमियों को उत्पाद, कीमतों, भुगतान संभावनाओं आदि के विषय में गलत सूचना की प्राप्ति। (7) व्यक्तियों द्वारा किसी भी चीज को अधिकतम करने का प्रयास न करना। (8) कार्य कुशलता का अभाव बाजार की अपूर्णताओं के कारण।

उपर्युक्त अपूर्णताओं के कारण अर्थव्यवस्था में सरकार की भूमिका की आवश्यकता होती है। आधुनिक अर्थशास्त्र के बाजार तंत्र में दोष के कारण सरकार अनेक प्रकार के कार्य करने लगी है बाहरी आक्रमण से देश की रक्षा करना, देश के अंदर कानून-व्यवस्था लागू करना, राष्ट्रीय मौद्रिक सेवा, सार्वजनिक वस्तुओं का निर्माण आदि राज्य की क्रियाओं के पारम्परिक रूप होते हैं। अंतरिक्ष अनुसंधान तथा वैज्ञानिक खोज सम्बन्धी कार्यों के लिए सरकारी आर्थिक सहायता की आवश्यकता होती है, बैंकिंग जैसी कुछ व्यवस्थाओं का नियमन सरकार करती है तथा विद्यालय, अस्पताल, जैसी सेवाओं के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करती है इस प्रकार बाजार

Scanned with CamScanner

~~करती है~~ की आर्थिक भूमिका काफी विस्तृत है लेकिन सरकार के प्रमुख आर्थिक कार्य तीन हैं: (i) प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करके, प्रदूषण जैसी बाह्यताओं को अन्तर्गत लोक वस्तुओं का प्रावधान करके सरकार कार्यकुशलता में वृद्धि करती है।

(ii) कर तथा लोक व्यय के द्वारा आय का पुनर्वितरण करके सरकार समानता लाने का प्रयत्न करती है।

(iii) राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति के माध्यम से बेरोजगारी तथा मुद्रा स्फीति को कम करके तथा आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करके सरकार समष्टि आर्थिक नीति की स्थिरता तथा आर्थिक विकास के जैसे उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करती है।

<u>आर्थिक विकास में सरकार की भूमिका</u>: द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् स्वतंत्रता प्राप्त किए हुए विकासशील देशों के सरकारों तथा युद्ध में ध्वस्त अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण कार्य में लगे अनेक पश्चिमी देशों ने आर्थिक विकास की प्रक्रिया में सरकार की प्रमुख भूमिका पर बल दिया। इस विचार का आधार यह धारणा थी कि बाजार अर्थव्यवस्था द्वारा तीव्र गति से आर्थिक विकास संभव नहीं है।

उस समय की विचारधारा के अनुसार पूँजी संचय को आर्थिक विकास की कुंजी माना जाता था, पूँजी संचय का तात्पर्य एक ओर निवेश की क्रिया तथा इसका पैटर्न है और दूसरी ओर इसका वित्त प्रबन्धन। अविकसित या अल्पविकसित देशों को विकास की प्रक्रिया को तेज करने के लिए निम्न कार्य करना जरूरी है:

(i) इन्फ्रास्ट्रक्चर का सृजन (Create infrastructure)

(ii) विदेशी पूँजी को आकृष्ट करना,

(iii) उद्योगों का विकास

(iv) कृषि के विकास के लिए सहायता, (v) भूमि व्यवस्था में सुधार, (vi) स्वास्थ्य में सुधार (vii) शिक्षा का प्रसार (viii) सिविल सर्विस को सशक्त बनाना, (ix) विकास के दृष्टि से लाभकारी सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन, (x) राजनैतिक स्थिरता के लिए अनुकूल स्थिति का निर्माण

उपर्युक्त सभी निवेश कार्यों के लिए भारी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है। इतना ही नहीं इनके निर्माण में समय भी काफी लगता है। इनके निर्माण कार्य के पूरा होने पर इनसे जो लाभ मिलता है वह पूँजी निवेश की तुलना में अत्यंत कम होता है। अतः इसे करने के लिए निजी लोग तैयार नहीं होते हैं।

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में भौतिक एवं मानवीय पूँजी निर्माण में निवेश की दर में वृद्धि करना जरूरी है। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि इस निवेश की वित्त व्यवस्था मुख्य रूप से घरेलू बचत की दर निम्न स्तर पर होती है। अधिकांश लोगों की आय इतनी कम होती है कि जीवन निर्वाह उपभोग की आवश्यकता पूरी करने के बाद मामूली ही कुछ बच पाता है इसलिए आर्थर लेविस ने 1954 में लिखा कि "आर्थिक विकास के सिद्धांत की प्रमुख समस्या उस प्रक्रिया को समझना है जिसके द्वारा कोई समाज जो पहले राष्ट्रीय आय के 4 या 5 प्रतिशत या उससे कम बचत तथा निवेश करता था, अपने को ऐसी स्थिति राष्ट्रीय आय के करीब 12 या 15 प्रतिशत या उससे अधिक

बचत करने वाली अर्थव्यवस्था में परिणत कर लेना है। अतः शुरू में आय के परिवर्ती विकसित पश्चिमी देशों ने बचत की दर में वृद्धि के लिए आय एवं सम्पत्ति के वितरण में असमानताओं के प्रक्रिया के द्वारा इस समस्या का समाधान किया। उस समय वहाँ के पूँजीवादी देश मितव्ययिता की भावना को अपनाया था और इसलिए उन्हें राष्ट्रीय आय का एक बड़ा भाग लाभ के रूप में प्राप्त करने की छूट दी गयी। इस भावना के पीछे मंशा यह थी कि लोग उपभोग कम करेंगे तथा बचत अधिक करेंगे।

अविकसित देशों में आय एवं सम्पत्ति के अत्यधिक असमान वितरण के कारण बचत की दर अधिक होनी चाहिए। लेकिन लेविस ने कहा कि ऊँची बचत या आय दर के लिए सिर्फ असमानता का ही होना पर्याप्त नहीं है, आवश्यक है एक विशेष प्रकार की असमानता की। ऐसी असमानता में राष्ट्रीय आय में पूँजीपतियों के लाभ का हिस्सा अधिक होना चाहिए। भूस्वामी, व्यापारी और अन्य आय प्राप्त करने वाले लोग सामान्यतः अपनी बचत को अनुत्पादक क्षेत्र में लगाते हैं। अल्पविकसित देशों के पूँजीपति भी औद्योगिक क्रांति के समय के पश्चिमी देशों के पूँजीपतियों के तरह मितव्ययिता की भावना से प्रेरित नहीं होते हैं। इसलिए Lewis का कहना है कि घरेलू बचत की दर को चार या पाँच प्रतिशत से बढ़ाकर 12 या 15 प्रतिशत करने के लिए पूँजीपति वर्ग पर निर्भर रहने पर एक सदी का समय लग सकता है। कोई भी अल्पविकसित देश इतने समय तक इन्तजार नहीं कर सकता है। इसलिए करों में वृद्धि करके लोक बचत पर निर्भर करना होगा। ऐसी ही विचारधारा 1950-60 के दशकों में प्रचलित थी। इसके अनुसार सरकारों ने करारोपण के माध्यम से बाध्यकारी बचत (Forced saving through taxation) अनिवार्य उधार (Compulsory lending) तथा साख प्रसार (Credit expansion) के रास्तों को अपनाया।

1960 में इस बात का पता चल गया कि बचतकर्ता के रूप में सरकार का रिकार्ड ठीक नहीं रहा। 1967 में Stanley Please (स्टानली प्लीज) ने सिखाया कि करारोपण द्वारा बचत में वृद्धि करना मृग मरीचिका के समान साबित हुई है। इसे प्लीज प्रभाव (Please Effect) का नाम दिया गया। प्लीज का कहना है कि लोक व्यय में तेजी से होने वाली वृद्धि का वास्तविक कारण है कर राजस्व में वृद्धि। वह पूछते हैं, "क्या प्रतिरक्षा व्यय में वृद्धि, सरकारी अफसरों के वेतन में बढ़ोत्तरी आदि के लिए जो राजनीतिक दबाव या लोगों की माँग का विरोध करना सम्भव है, जब यह पता है कि सरकार की तिजोरी में पैसा है।"

विश्व विकास रिपोर्ट 1988 का कहना है कि विकासशील देशों की केन्द्रीय सरकार का चालू राष्ट्रीय आय अनुपात 1972 में 16 प्रतिशत से बढ़कर 1985 में 23 प्रतिशत हो गया। इस वृद्धि के बावजूद लोक राजस्व से लोक व्यय अधिक रहा। फलतः इन देशों का राजकोषीय घाटे का सामना करना पड़ा जो 1972 में राष्ट्रीय आय का 3.5 प्रतिशत था। 1985 में यह बढ़कर 6.3 प्रतिशत हो गया। प्लीज का कहना है कि राजस्व की वृद्धि लोक व्यय में वृद्धि के साथ जुड़ी हुई है, बजट बचत के साथ नहीं। (Additional revenue is accompanied by spending increases, not by an increased budget surplus.)

G. Thimmaiah (जी थिमय्याह) ने 1960-61 से 1972-73 की अवधि में भारत में कर राजस्व तथा बचत के मध्य सम्बन्ध का

अध्ययन किया। जिन चिमन्याह के अनुसार इस अवधि में कर राजस्व में पर्याप्त वृद्धि हुई - 7 प्रतिशत से 15 प्रतिशत। इस वृद्धि का अधिकांश भाग सरकार के उपभोग के व्यय के वित्त प्रबन्धन पर खर्च हुआ न कि सरकारी बचत में वृद्धि करने पर। फलतः कुल कर राजस्व में शुद्ध सरकारी बचत का हिस्सा 20 प्रतिशत के बजाए 12 प्रतिशत हो गया तथा घरेलू बचत में यह 23.3 प्रतिशत से गिरकर 15.8 प्रतिशत पर आ गया। 1980 के दशक में स्थिति और भी बिगड़ गई। सरकार का राजस्व बजट जो अतिरेक को दर्शाता था 1979-80 से घाटे में चला गया। निष्कर्ष यह निकलता है कि कर राजस्व में वृद्धि के माध्यम से घरेलू बचत को प्रोत्साहित करने की नीति को विशेष सफलता नहीं मिली तथा सार्वजनिक क्षेत्र (Public sector) के विस्तार का अन्ततः परिणाम यह हुआ कि सरकार के आन्तरिक ऋण में वृद्धि होती गई और 1980 के दशक के खत्म होते-होते ऐसे ऋण का भार असह्य हो गया।

उपर्युक्त कारणों से सरकार की भूमिका का 1980 के दशक के मध्य से पुनर्मूल्यांकन किया जाने लगा। आर्थिक विकास के संदर्भ में राज्य की भूमिका में कटौती करने के लिए ऐसी मान्यता मान्यता काम कर रही थी कि सरकार के उद्देश्य सही हैं, इसे सही सूचना उपलब्ध है तथा यह दक्ष है। किन्तु ये सभी मान्यताएँ गलत हो चुकी हैं। वस्तुतः सरकार की असफलताओं के अनेक प्रमाण मिलते हैं जो सूचना के अभाव, नैतिक पतन तथा किराया सम्बन्धी व्यवहार प्रमाण मिलते, जो के प्रादुर्भाव से जो समस्याएँ उत्पन्न हुईं उनका सही अनुमान नहीं लगाया जा सका। 1990 के दशक के प्रारम्भ में बाजार की असफलताओं के स्थान पर सरकार की असफलताओं पर बल दिया जाने लगा। 1988 में विश्व बैंक द्वारा प्रकाशित विश्व विकास रिपोर्ट में द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात आर्थिक विकास की प्रक्रिया में सरकार की बदली भूमिका को 'लोकहित दृष्टिकोण' नाम दिया गया। किन्तु विकास की धीमी गति, बचत कम, मुद्रास्फीति की ऊँची दर, आन्तरिक एवं बाह्य ऋण में तेजी से वृद्धि, निर्धनता तथा बेरोजगारी के बने रहने, घरेलू व्यावसायिक वर्ग के विकास, आर्थिक विकास में विदेशी कम्पनियों के सहयोग की आवश्यकताओं, संचार क्रांति जैसी तकनीकी प्रगति आदि के कारण आर्थिक विकास में सरकार की भूमिका को घटा दिया। इस कारण विश्व विकास रिपोर्ट, 1988 के शब्दों में, निजी हित व्याख्या (Private interest view) का विकास हुआ, जिसने विकास में सरकार की भूमिका के महत्व को घटा दिया। स्टर्न का कहना है कि इसमें संदेह नहीं कि सरकार की विफलताएँ, विशेषकर विकासशील राष्ट्रों में, गम्भीर रही हैं।